परिशिष्ट

वर्तमान जीवन-परिप्रेक्ष्य का सन्दर्भ और काशीनाथ सिंह का उपन्यास

संतोष कुमार गुप्ता
शोध-छात्र, हिन्दी-विभाग
उत्तरबंग विश्वविद्यालय
मोबाईल: +91 9851140555

यूँ तो हर रचनाकार अपनी रचना के माध्यम से अपने समाज के विभिन्न पहलुओं को अपनी रचना में उकेरने की कोशिश करता है और अपने सामाजिक सरोकारों को साबित करता है, जिसे हम समकालीन शब्द से अभिहित करते हैं। वैसे 'समकालीन' शब्द को परिभाषित करना इतना सरल भी नही है। इसे लेकर विभिन्न तर्क बरकरार है। एक तरफ यह समय विशेष की ओर इंगित करता है तो दुसरी ओर अपने समय के सरोकार को। 'समकालीन' शब्द अंग्रेजी के 'contemporary' का समानार्थी है, जिसका अर्थ है- 'अपने समय का' अर्थात समसामयिक डा.एन. मोहनन के शब्दों में- *"समय के सच को तटस्थता के साथ परखने की क्षमता किसी को समकालीन बनाती है"* [1] कहा जाता है कि रचनाकार दुरदर्शी होता है और भविष्य में उतपन्न होनेवाली असंगतियों को पहले ही भाँप लेता है और समय के साथ जंग छेड़ते हुए वर्तमान समय की जटिलताओं को सुक्ष्मता के साथ व्याख्यायित करता है और एक जागरुक चेतना के निर्माण का कारक बनता है जिसमें मानव कल्याण की भावना होती है। इस संदर्भ में हिन्दी उपन्यासों का खासा महत्व रहा है और समकालीन हिन्दी उपन्यासों ने तो अपनी समय की सच्चाई को पूरी निष्ठा के साथ व्यक्त करने में काफ़ी सफ़ल रहे हैं।

इस सन्दर्भ में कथाकार काशीनाथ सिंह के उपन्यासों की बात न की जाए तो बात पूरी नही होती और इसकी शुरुआत 'काशी का अस्सी' से न की जाए तो भी बहुत कुछ अधूरा रह जाएगा। समकालीन उपन्यास सही मायने में अपने समय और समाज के यथार्थ की सही समझ है और ये समझ काशीनाथ सिंह के उपन्यासकार में खूब देखने को मिलती है।

'काशी का अस्सी' की कथा सन 1962 के भारत-चीन युद्ध से लेकर अयोध्या-कांड से टकराती हुइ भुमंडलीकरण की हर सीमा को छुती है। बनारस केवल भारतीय संस्कृति की ही नही, बल्कि साहित्य की भी राजधानी रही है। उपरोक्त उपन्यास पाँच अलग-अलग कहानियों को अपने में समेटे हुए है, जो एक दूसरे के पूरक हैं। काशीनाथ सिंह के ही शब्दों में- *"तो सबसे पहले इस मुहल्ले का मुख्तर-सा बायोडाटा- कमर में गमछा, कंधे पर लंगोट और बदन पर जनेऊ यह युनिफ़र्म है काशी का।"* [2] और *"हर-हर महादेव के साथ भोसरी के का नारा सार्वजनिक अभिवादन है।"* [3] परन्तु इस भूमंडलीकरण के दौर में संस्कृति, सभ्यता और संबंध अपने अस्तित्व को बचाने की लड़ाई लड़ रहे हैं। बनारस को धार्मिक और साहित्यिक केन्द्र की जगह 'डिजीटल सिटी' बनाने का लालच दिया जा रहा है, जो कि वहाँ की जनता को कतई बर्दाश्त

नही। उनकी संस्कृति और सभ्यता पर किसी की बूरी नजर पड़े ये तो बर्दाश्त के बाहर की चीज है।

डा.एन. मोहनन के ही शब्दों में- *"काशीनाथ सिंह का 'काशी का अस्सी' बनारस का शोक-गीत है।"*[4] काशीनाथ सिंह ने इस उपन्यास के माध्यम से भूमंडलीकरण, उपभोक्तावाद, उपनिवेशवाद और विस्थापन के प्रभाव को को अस्सी की संस्कृति पर पड़ते हुए दिखाया है। यूँ कहें कि यह प्रभाव पूरे देश पर पड़ रहा है तो अतिश्योक्ति न होगी। काशी का अस्सी समय का साक्ष्य है। काशी इतनी तेजी से बदलाव की तरफ़ अग्रसर होगा वहाँ की जनता के लिए अकल्पनिय है। इनके खिलाफ़ षड्यंत्र रचा गया है भूमंडलीकरण का, बजारवाद का। और ऐसे बजारवाद के चक्कर में पं. धर्मनाथ शास्त्री जैसे लोग भी फँस जाते है, और 'पेइंग गेस्ट' रखने का मन बनाते हैं। इसलिए 'शिवालय' को तोड़ वहाँ आधुनिक शौचालय का निर्माण करवाते हैं। जिससे मादलिन जो कि पं. धर्मनाथ शास्त्री के यहाँ पेइंग गेस्ट के तौर पर रहनेवाली है, उसे कोई असुविधा न हो और उन्हे मोटी कमाई हो सके। ध्यान देने की बात है कि जहाँ कभी शिवलिंग रहा होगा आज वहाँ 'कमोड' अर्थात मल-विसर्जन पात्र शोभायमान है और यह बदलाव है हमारे समाज का, हमारी संस्कृति का, काशी का ही नही पूरे देश का।

एक और उपन्यास 'रेहन पर रग्घू' जो समकालीन जीवन का महाकाव्यात्मक आख्यान है। संबंधो में ठंडापन तो भारत-चीन युध्द के बाद ही पड़ने लगता है। परिवार टूटने-बिखड़ने लगते है। लोगों क पलायन गाँव से नगरों की तरफ़ होने लगता है। रही सही कसर सन 1965 और सन 1971 का भारत-पाक युद्ध, 1975 का आपातकाल, 1984 का भोपाल गैस-त्रासदी और 90 के दौर में नरसिंह राव के शासन-काल में अमेरिकी नीति के तहत उदारीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत पूरी कर देती है। भारत जैसा विकासोन्मुख राष्ट्र के बाजार विकसित राष्ट्रों के लिए खुला मंच बन जाते हैं और साथ ही नवउपनिवेशी शक्तियाँ अपनी जड़ें मजबूत करने लगती हैं और ये बाजारवाद और उपनिवेशी शक्तियाँ हमारे संबंधो को खोखला करने में अपनी भूमिका बखूबी निभाने लगते हैं। 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास में प्रो. रघुनाथ सपत्नी अपने दो बेटों और एक बेटी सहित कुल पाँच लोगों के परिवार के साथ रहते हैं और ये कह देना कि सुखी रहते हैं ये उनके साथ इंसाफ़ न होगा। बाकि सदस्य भले ही सुखी हो लेकिन प्रो. रघुनाथ के संदर्भ में ये बात लागू नही होती। छोटा बेटा धनंजय नई अर्थव्यवस्था के चकाचौंध में जीनेवाला व्यक्ति है। वहीं दूसरा और बड़ा बेटा संजय विदेश में करियर के लोभ में प्रोफ़ेसर सक्सेना की बेटी सोनल से शादी कर लेता है और बेटी भी एक नीच वर्ग के व्यक्ति से प्रेम करती है जो कि एक सरकारी आधिकारी है। और इस तरह रघुनाथ के सारे सपने बिखर जाते है। रेहन पर रग्घू व्यक्ति की ही नही, समकालीन समाज के बदलते हुए स्वरूप को चित्रित करती है। नामवर सिंह के शब्दों में – *"बताने की जरूरत नही कि इस कथा में, बदलते यथार्थ की इस प्रस्तुति में, इसका प्रतिरोध भी छुपा हुआ है और इस तरह, इस व्यवस्था को चुनौती भी दी गई है।"*[5] यह कथा विस्थापन एवं मरती हुई संवेदना की करूण कथा कहती है और साथ ही समाज के हर एक वृद्ध की भी जो अपनों के ही रेहन पर पलने के लिए मजबूर हैं।

उपन्यासों की अगली कड़ी में नाम लिया जा सकता है- 'अपना मोर्चा' का जिसमें व्यवस्था से संघर्ष करके समाजिक बदलाव लाने का शंखनाद है।

समूची व्यवस्था सड़-गल चुकी है और सब-कुछ भगवान भरोसे चल रहा है जिसको मानने के लिए आज की पीढी कतई तैयार नही है। आज की पीढी उस पंगु हो चुकी व्यवस्था से निजात पाना चाहती है। इसके लिए वो कमर भी कस चुकी है इसके लिए व्यवस्था के भीतर जाकर उसे पूरी तरह से परखना चाहती है। उपन्यासकार के ही शब्दों में- *"मुझे बार-बार लगा है कि अगर हम कुछ कर सकते हैं तो बाहर से नही, बल्कि भीतर से; उसमें धँसकर, बीच में अपने को फँसाकर, दूसरों को तोड़ने या शर्मिन्दा होने का मौका निकालकर।"*[6]

'महुआ-चरित' काशीनाथ सिंह के उपन्यासों में अगला सोपान है। यह एक लघु उपन्यास है और इस उपन्यास में समकालीन समाज के परिवेश को खास करके अस्मिता-बोध को पूरे निष्ठा से दर्शाया गया है। उपर्युक्त उपन्यास में 'महुआ' के माध्यम से ये देखा जा सकता है कि आज के समाज में एक इंसान अपनी अस्मिता की खोज में किस तरह बेचैन है। अपनी कल्पना में उड़ान भरने के लिए किस तरह से तत्पर है और अपने अस्तित्व की खोज में किस तरह वह भटकता रहता है। वह उन्मुक्त और स्वतंत्र जीवन जीना चाहता है। उसे अपने जीवन में किसी की दखलअंदाजी पसंद नही। भौतिक सुख के साथ-साथ शारीरिक सुख जीवन का अनिवार्य तत्व है, ये महुआ के माध्यम से आसानी से देखा जा सकता है। निम्न पंक्तियों के माध्यम से उपर्युक्त बातें आसानी से समझी जा सकती है- *"मैं जब भी बाथरूम में नहाने जाती, कपड़े अलग करती और अपने बदन को बड़े गौर से देखती। हो सकता है गलत हो यह लेकिन जाने क्यों मुझे लगता कि यह शरीर गमले में पड़े गुलाब के उस पौधे की तरह हो गया है जिसे अगर तुरन्त पानी न मिला तो सुखते देर न लगेगी! इसे पानी चाहिए, कोई पानी दो। लेकिन कौन देगा पानी?"*[7]

आज के समय में एक-दूसरे पर विश्वास बनाये रखना टेढी-खीर है। महुआ की देहाशक्ति से विवाह तक की यात्रा के बाद जब उसका पति हर्षुल उससे छल करता है तब उसमें अस्मिता-बोध की भावना जागृत होती है और वह हर्षुल से रिश्ता तोड़ हमेशा के लिए चल पड़ती है। अपने अस्मिता-बोध के सहारे अपने अस्तित्व की तलाश में। महुआ कहती है- *"हर्षुल, मैनें तुमसे कभी नही पूछा कि पिछले तीन साल से ही नही, आज भी तुम वर्तिका बनर्जी के साथ क्या कर रहे हो? क्या कर रहे हो जानती हूँ, लेकिन नही पूछूँगी। इतना याद रखना।"*[8] स्त्री विमर्श के अनुगूँज के बावजूद यह प्रश्न आकार लेता है, 'ऐसा क्या है देह में कि उसका तो कुछ नही बिगड़ता, लेकिन मन का सारा रिश्ता-नाता तहस-नहस हो जाता है।

'उपसंहार' काशीनाथ सिंह का नवीनतम उपन्यास है, जिसमें महाभारत की उत्तरकथा है और 18 दिनों के नरसंहार के बाद धर्मराज युधिष्ठिर को राजगद्दी की प्राप्ति होती है। परन्तु क्या जिस राजसिंहासन के लिये महाभारत जैसा युद्ध हुआ, उस पर बैठकर क्या धर्मराज सुखी है? नही, बिल्कुल नही। धर्मराज अब स्थिल पड़ चुके हैं। पूरे राज्य में महामारी फ़ैली है। जमीनें बंजर पड़ चुकी है। प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही है और धर्मराज लाचार पड़े हुए है। चारो ओर भ्रष्टाचार का दानव मुँह फ़ैलाये घुम रहा है। वहीं दूसरी तरफ़ कृष्ण की करूण कथा का भी वर्णन मिलता है कि किस तरह कृष्ण बूढे हो चुके हैं, दाढी पक चुकी है। उनका शरीर अब पहले की तरह साथ नही देता। उनकी सुननेवाला अब कोई नही है, जो समुद्र कल को कृष्ण का पाँव पखारने उमड़ा हुआ आता था आज उनके सामने सीना ताने दूर खड़ा है। उनके

नाती-पोते भी मनमानी करने लगे हैं। पूरी की पूरी व्यवस्था गड़बड़ हो चुकी है। प्राग्ज्योतिषपुर से जिन सोलह हजार कन्याओं का उद्धार कर कृष्ण ने जो बस्तियाँ बसाई थी, उनका बेटा भद्रकार उनमें से तीन को लेकर भाग चुका है जो कृष्ण और उनकी पत्नी सत्या का पुत्र है। इस तरह के बूरी खबर और विपत्तियों के सुनने का आदि हो चुके थे कृष्ण, परन्तु कुछ कर सकने में असमर्थ थे। एक दिन ऐसे ही उनका पुत्र साम्ब ऋषि मुनियों से पूरे यादव वंश के विनाश का शाप ले आया और उन ऋषि मुनियों, जिनमें महर्षि कश्यप, विश्वामित्र, नारद के अलावा कण्व ऋषि भी थे जिनके शाप के फ़लस्वरूप साम्ब नें मूसल पैदा किया और अन्तत: उसी मूसल के द्वारा कृष्ण के हाथों ही पूरे यादवों का विनाश हो गया।

उपर्युक्त उपन्यासों के माध्यम से हम यह देख पाते हैं कि काशीनाथ सिंह का उपन्यासकार अपने उपन्यासों का विभिन्न कलेवर रखते हुए भी समाज के तमाम विडंबनाओं को खंगालने की कोशिश करता है। समकालीन समाज में घटित तमाम घटनाओं एवं विडंबनाओं को हम इन उपन्यासों में लक्षित कर सकते हैं। समय तेजी से बदल रहा है और इस बदलाव के चपेट में हमारी तमाम संस्कृतियाँ डाँवाडोल हो रही है और इसके साथ ही हमारी संवेदनाएँ दिन-ब-दिन मरती जा रही है। इस भूमंडलीकरण, बाजारवाद, उपभोक्तावाद और नवउपनिवेशिक शक्तियों के बीच हम अपना सब कुछ पीछे छोड़ते जा रहे हैं।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

1. डा. एन. मोहनन, समकालीन हिन्दी उपन्यास, वाणी प्रकशन, प्रथम संस्करण-2013, पृ. संख्या-20.
2. काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2006, पृ. संख्या-11.
3. वही, पृ. संख्या-11.
4. डा. एन. मोहनन, समकालीन हिन्दी उपन्यास, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2013, पृ. संख्या-46.
5. डा. नामवर सिंह, चौपाल, अंक-1, वर्ष-1, 2014, पृ. संख्या- 29.
6. काशीनाथ सिंह, अपना मोर्चा, राजकमल प्रकाशन, दूसरा संस्करण- 2007, पृ. संख्या- 46.
7. काशीनाथ सिंह, महुआचरित, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण-2012, पृ. संख्या- 12.
8. काशीनाथ सिंह, महुआचरित, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण-2012, पृ. संख्या- 100.

उपसंहार : ईश्वर से मानव बनने की कथा

संतोष कुमार गुप्ता
शोध-छात्र
उत्तरबंग विश्वविद्यालय
E-mail:
santu.nbu@gmail.com
Mobile No. +91-
9851140555.

महाभारत 18 दिनों तक चलनेवाला भीषण 'नरसंहार' था, जिसमें भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, अभिमन्यु जैसे अनेकों वीर वीरगति को प्राप्त हुए जो इस धरती पर कभी-कभार ही जन्म लेते हैं। महाभारत के इस युद्ध में आर्यावर्त का कोई ऐसा राज्य नहीं था, कोई ऐसा नरेश नहीं था, जो इस या उस पक्ष से लड़ा न हो। तीनों लोक में पाया जानेवाला कोई ऐसा अस्त्र-शस्त्र नहीं था, जिसका प्रयोग इस युद्ध में न किया गया हो। इस युद्ध में ऐसे-ऐसे अस्त्र-शस्त्रों और दिव्यास्त्रों का प्रयोग किया गया था, जिससे धरती बंजर हो जाए और नदियाँ सूख जाए। पूरा कुरुक्षेत्र लाशों से पट गया था- 'सड़ी-गली' बजबजाती लाशों से। जगह-जगह रक्तकुंड बन गए थे, गिद्ध, चील और कौवों से आसमान भरा रहता था, पूरा कुरुक्षेत्र भयावह दुर्गंध से भर गया था। साफ़-सुथरी हवाओं का भी उस क्षेत्र में आना बंद हो गया था। कौरवों और पांडवों के इस 'महाभारत' में अनगिनत लोग मारे गए और विजयश्री का ताज पांडवों के हाथ लगा। परंतु इसके पश्चात क्या हुआ? यह एक बहुत बड़ा प्रश्न है, और इसी प्रश्न का जवाब देता है- काशीनाथ सिंह का उपन्यास 'उपसंहार'।

कृष्ण के मार्गदर्शन में पांडवों ने जो धर्मयुद्ध लड़ा और जीता, क्या उसके बाद उन्हें वह शांति प्राप्त हुई? जिनकी लालषा उनके हृदय में थी। क्या वे प्रजा को खुश रख पाए? कृष्ण क्या ईश्वर बन कर रह पाए? नहीं। कृष्ण अपने सारथी दारुक से कहते हैं- "बस यह समझ लो कि प्रत्येक मनुष्य कभी-न-कभी कुछ ही पलों या क्षणों के लिए ही सही, किसी-न-किसी का ईश्वर हुआ करता है। ऐसा एक नहीं कई बार हो सकता है। आखिर ईश्वर है क्या? मनुष्य का श्रेष्ठतम का प्रकाश ही तो?"[1] कृष्ण दारुक से पूछते हैं कि 'मेरे आँखों में आँसू क्यों नहीं हैं?' तो दारुक उत्तर देता है- 'भगवान कहाँ रोते हैं?' इस पर कृष्ण का प्रश्न होता है कि 'भगवान बनने के लिए पत्थर होना जरूरी है क्या?' और यह भी कहते हैं कि 'किसी राजा का महल इतनी ऊँचाई पर नहीं होना चाहिए, जिससे लोगों का रोना-गाना न सुना जा सके।' ये सारी बातें समकालीन समय कि विसंगतियों पर भी प्रकाश डालती हैं और हमें विचार करने पर मजबूर भी करती हैं कि क्या तत्कालीन समाज में यहीं बातें घटित नहीं हो रहीं ? कृष्ण ईश्वर से सामान्य मानव महाभारत के बाद ही बने। 'उपसंहार' जितनी कृष्ण की कथा है उतने ही उनके विनाश और द्वारका के विनाश की। मानव से ईश्वर बनने की और ईश्वर से मानव बनने की महागाथा है - 'उपसंहार'। इस संदर्भ में डॉ. शिवचन्द्र प्रकाश लिखते हैं- "काशीनाथ सिंह कृष्ण-कथा के बहाने युग-सत्य (बल्कि शाश्वत सत्य) को प्रतिष्ठित करने का सफल प्रयास किया है जिसका सारांश है – 'चरम सफलता में निहित है एकाकीपन का अभिशाप'।"[2] कृष्ण के जीवन का यही सच है और हर सत्तासीन व्यक्ति का भी। जो स्थिती कृष्ण की थी, ऐसी स्थिती में वह सबका होता भी है और नहीं भी होता है। वह जिंदगी भर अपनों से लड़ता हुआ अपने और अपने विरोधियों के विरोध को सहता हुआ वह निरीह और अकेला होता होता है, स्वयं में घुटता हुआ। 'ऐश्वर्य की भी एक मियाद होती है' (उपसंहार-पृ. 50) जिसे किसी-न-किसी दिन तो शेष होना ही है। डॉ. शिवचन्द्र प्रकाश का यह

कहना बहुत ही सटीक जान पड़ता है- "रथ, सुदर्शन चक्र, नारायणी सेना, बंधु-बांधवों का साथ छोड़ देना, द्वारका का जलमग्न होना, यादवों का विनाश, अपने घर में लक्ष्मणा, साम्ब आदि का विरोध तो यही सिद्ध करते हैं कि ऐश्वर्य की भी एक मियाद होती है।"[3]

महाभारत खत्म होने के पश्चात सर्वप्रथम कृष्ण नें द्वारका को बसाया, जिसमें सभी 18 यादव कुलों को बसाया। इनमें वृष्णि, अंधक, भोज, सात्वत, यदु, तुर्वसु, चेदि, कुकुर, द्विमिढ़, कौशिक, शैनेय, महभोज, बहुम, मधु, आभीर, राष्ट्रिक, दार्शाह सभी थे। इन्हीं कुलों में बढ़ई, लुहार, कुम्हार, गड़रिये, किसान, नाई, धोबी, वाणिक सब थे। उन्हें, शुरू में तो बहुत याद आते थे- मथुरा, नन्दगाँव, बरसाने, वृन्दावन, गोकुल, लेकिन धीरे-धीरे अपनी उन्हीं ब्रज की संस्कृतियों के साथ वे द्वीप (द्वारका) की मिट्टी में रच-बस गए। परंतु उस द्वारका का अंत और उन यादव कुलों का अंत कैसे हुआ यह भी उक्त उपन्यास बताने की चेष्टा करता है। महाभारत के युद्ध के बाद युधिष्ठर हस्तिनापुर के महाराज बने, परंतु उनके राज में अकाल, महामारी, सूखा आदि ने डेरा जमाया। हर तरफ़ अशांति का महौल फैल गया, अधर्म की पराकाष्ठा देखने को मिल रही थी। प्रजा में हाहाकार मची हुई थी और युधिष्ठिर अपनी जिम्मेदारियों से भागे-भागे फ़िर रहे थे। ऐसे समय में उन्हें यात्रा की सूझती थी। उपन्यास में एक जगह युधिष्ठिर अपने भाईयों से कहते हैं-

"मैं कितना सौभाग्यशाली हूँ कि मुझे तुम लोगों जैसे भाई मिले हैं और यह कितना अच्छा सुयोग है कि आकाश में बादल नहीं है, बारिश की आशंका नही है, मौसम सुहावना है, हवा में नमीं नही है। मैं कल कैलाश मानसरोवर की यात्रा पर निकलना चाहता हूँ।" [4]

प्रजा की चिंता उन्हें बिल्कुल नहीं थी। वहीं दूसरी तरफ कृष्ण एक विवश इंसान बन कर रह गए थे, एक मजबूर इंसान। और अपनी छल और कपट के लिए आत्मग्लानि से भरे पड़े थे, जिसका मूल्य उन्हें अपने नींद और चैन की बलि दे कर चुकानी पड़ रही थी और अब वे पछता रहे थे कि अगर वो चाहते तो इस भीषण नरसंहार को रुकवा सकते थे। कल जो समुद्र उनका पांव पखारने दौड़ा चला आता था, आज वो भी उनसे नाराज रहने लगा है-

"ऐन्द्रद्वार' में प्रवेश करते हुए कृष्ण नें दारुक से कहा-'देखो, यही वही समुद्र है, जो मेरे श्यामशिला' पर बैठते ही पाँव पखारने के लिए दौड़ पड़ता था, आज कैसे दहाड़ रहा है।" [5]

कृष्ण का शरीर अब पहले जैसा नही रहा, दाढ़ी पक चुकी है और कमर भी थोड़ी झुक गई है, और अब कुछ ऊँचा भी सुनने लगे हैं। परंतु आज भी सिर के उपर वैष्णवी मुकुट, माथे पर रोली, अक्षत और चंदन का तिलक, वक्ष पर मणि, मुक्ता हीरे का हार, बाहुमूल पर सुनहले बाजूबन्द, कलाईयों में रक्षा के मोटे धागे, दोनों कंधों से झूलती रेशमी उत्तरीय, कमर में करीने से पहना हुआ पीतांबर- सब कुछ वही था, बस एक चीज नहीं थी। वह चीज थी- उनके चेहरे की मुस्कान। महाभारत के बीते 36 साल हो चुके हैं, परंतु ऐसा लगता है कि जैसे ये कल की ही बात हो। कृष्ण के जिस विराट रूप को देखकर अट्ठारह औक्षोहिनी सेना अपनी दृष्टि खो बैठी थी आज वे अवश नजर आते हैं। 'उपसंहार' मनुष्य होने की त्रासदी, नियति और संघर्ष की कहानी है, 'उपसंहार' युद्ध और शांति के बीच आंदोलन की कहानी है।

काशीनाथ सिंह अपने तल्ख मिजाज और राजनीतिक व्यंग्य के लिए जाने जाते हैं और उनकी पहचान 'काशी का अस्सी' बन चुकी है, परंतु इसके परे उन्होनें इस बार 'उपसंहार' के साथ और मिथक पात्रों के साथ नई दिशा की ओर प्रस्थान करते नजर आते हैं। आलोच्य उपन्यास में काशीनाथ सिंह यह दिखाने की चेष्टा करते हैं कि कृष्ण कैसे अपने चाल में कामयाब हुए और एक से बढ़कर एक वीरों का विनाश करवा दिया धर्मयुद्ध के नाम पर। परंतु वे उस धर्म की स्थापना करने में नाकामयाब रहे। अब वो द्वारका में अकेले हो कर रह गए हैं, उनकी सुननेवाला कोई नहीं रह गया है। हाँ, बलराम बीच-बीच में आते रहते हैं और द्वारका में घट रही

घटनाओं के बारे में कृष्ण को सूचित करते रहते हैं, परंतु वे भी कृष्ण से नाखुश हैं। क्योंकि वे भी जानते हैं कि अगर कृष्ण चाहते तो इस महाभारत को रुकवा सकते थे और अनेक वीर बेमौत मरने से बच सकते थे उनके शिष्य दुर्योधन को भीम धर्मयुद्ध में कभी नहीं हरा सकते थे। कृष्ण के इशारों को समझ कर ही अर्जुन ने भीम को दुर्योधन के जांघ पर चोट करने के लिए कहा था और भीम द्वारा दुर्योधन के जांघ पर चोट करते ही दुर्योधन धराशायी हो कर जमीन पर गिर पड़ा था और बलराम गदा ले कर भीम के पिछे दौड़ पड़े थे। कर्ण, कुन्ती का ज्येष्ठ पुत्र था, भला ये कौन जानता था? परंतु कृष्ण ने ये बात कर्ण को बताई, क्योंकि वे जानते थे कि कर्ण के रहते दुर्योधन को हराना संभव नही था और फ़िर कर्ण ने कुन्ती को पाँच पुत्रों के जीवित रहने का वचन दिया था। कौरव और पांडव आखिर आपस में भाई ही थे, परंतु संपत्ति के लिए इतना बड़ा युद्ध पूरे विश्व में शायद ही कहीं लड़ा गया हो।

'उपसंहार' मानव के विनाश की कथा कहती है कि किस तरह मानव अपने विनाश के लिए स्वंय अस्त्र तैयार कर रहा है। कच्चा माल भले ही महाभारत जैसे मिथक और उससे लिए गये पात्रों का हो, परंतु यह उपन्यास तत्कलीन समय के विडंबनाओं की ओर भी इशारा करती है। महाभारत के युद्ध के बात कृष्ण की सारी शक्तियाँ क्षीण हो चुकी हैं। सुदर्शन चक्र भी अपने गंतव्य की ओर लौट गया है। कृष्ण अब पूरी तरह साधारण मानव के रूप में परिवर्तित हो चुके हैं। इतने बच्चों के बाप बन चुके हैं कि उन्हें सभी काम-नाम तक याद नहीं, इसके साथ ही उनके कई नाति-पोते भी हो चुके हैं। सभी मनमानी करने लगे हैं, पत्नियाँ सिर्फ़ इसलिए उनके पास आती हैं क्योंकि उन्हें बच्चों के बारे में शिकायत करनी होती है। नगर का हाल बद से बद्तर होता जा रहा है। कृष्ण ने असम के प्राग्यज्योतिषपुर से जिन सोलह हजार कन्याओं को भौमासुर के चंगुल से मुक्त कराया था उन्हें वे अपनी पटरानी स्वीकार कर नगर में ही रहने की व्यवस्था करवा दी थी जो अब परेशानियों की मुख्य वजह बन चुकी थी । ऐसी खबर मिलने लगी थी की कामातुर सोलह हजार कन्याओं के रावटियों के पास यादवों के छोरे मँडराते रहते थे और देर रात उनके साथ नौका-विहार करते थे। इस समस्या का सामाधान कृष्ण को सूझ नहीं रहा था-

"उन्होंने तटरक्षकों की संख्या बढ़ा दी और रक्षकों का जाल वहाँ तक फैलाया जहाँ तक रावटियाँ थी। कुछ दिन तक तो ठीक रहा, लेकिन कुछ दिनों बाद सुनाई पड़ने लगा कि वे रक्षक रावटियों के अंदर चोरी-छिपे आते-जाते देखे जा रहें हैं।"[6]

इसके अलावे भी अनेकों परेशानियां थी- कृष्ण से जो लोग मिलने आते थे, अगर वे पहचान के न होते तो द्वारपाल उनसे पण(ताँबे का सिक्का) माँगते थे। उधर तट पर जिन नाविकों को राजकोष से वेतन देकर नियुक्त किया गया था जिससे नगरिक एक ओर से दूसरी ओर आसनी से आ-जा सकें, उनसे नाविक अब किराया मांगने लगे हैं। यादव कुलों में छोटे-छोटे गुट बन गए हैं और आए दिन उनके बिच छोटी-मोटी झड़प की सूचनाएँ मिलती रहती हैं। कृष्ण और जांबवंती का बेटा साम्ब अपनी पत्नी लक्ष्मणा के साथ महल छोड़ गया है और साथ-साथ लक्ष्मणा अपने साथ सारी गौवें ले गई है, सत्यभामा और और कृष्ण का बेटा भद्रकार, प्राग्यज्योतिष्पुर से लाई गई सोलह हजार में से तीन को ले भागा है और उधर उसकी पत्नी सत्या रो-रोकर जान दे रही है। बात यहीं तक आ कर नही रुकती अब तो लूट-खसोट और बलात्कार की घटनाएं भी होने लगी हैं। इन सब बातों के बीच कृष्ण उलझे ही थे कि गुप्तचर आ धमका-

"राजन मामला बड़ा गंभीर है। आज यदुवंशियों और भोजवंशियों के बीच बलवा हो गया। तीन लोग इधर से मारे गए हैं और पाँच लोग उधर से। दुश्मनी बड़ी पुरानी थी। आपने ही उसे सुलझया था। यदुवंशियों की जो दस गायें गायब हुई थी, उन्हें यह संदेह था कि यह काम भद्रवाह का है। यह बात आई-गई हो गई थी। लोग भूल गए थे। मेल-मिलाप, उठना-बैठना था, खान-पान था, लेकिन परसों ऐसा हुआ कि भद्रवाह की नाबलिग बेटी लक्षणा का अपहरण कर लिया कुछ लोगों ने और नांव से समुद्र पार प्रभास ले गए। कहते हैं पाँच छोकरे थे। उन्होंने उसके साथ बलत्कार किया और हत्या भी कर दी।"[7]

इन सब से परेशान कृष्ण गार्ग्य मुणि को बुलवाया, जो बहुत वृद्ध हो चुके थे। पालकी में बैठकर गार्ग्य मुणि आए और आते ही

हाँफ़ते हुए कृष्ण से कहा-

"राजन! मैं कई दिनों से परेशान था आपसे कुछ निवेदन करने के लिए। अच्छा किया जो बुलवा लिया। मुझे कुछ नहीं देखना है, सब कुछ देख लिया है। बड़े बुरे दिन आनेवाले हैं द्वारका के। आपके महल के बाहर गरूरद्वार पर मैंने कलिकाल को खड़ा देखा है। वह महल के खाली होने का इंतजार कर रहा है कि आप इसे छोड़ें और वह दखल करे। इससे अधिक क्या कहूँ।"[8] गार्ग्य मुनि का आशय साफ है कि द्वारका का विनाश बहुत ही निकट है।

कृष्ण इन उधेड़-बुन में व्यस्त ही थे कि द्वारपाल से पता चला कि कोई ऋषि आए हैं जिनके आँखों में सिर्फ़ क्रोध-ही-क्रोध है और वे हर किसी को श्राप देते आ रहे हैं। कृष्ण यह खबर सुनते ही परेशान हो उठे, क्योंकि यह संकेत दुर्वासा मुणि के अलावा किसी की नहीं हो सकती। तत्काल दारुक को हिदायत दी कि सभी "नौकरों-चाकरों, सेवक-सेविकाओं से कह दो कि कोई भी उनका प्रतिवाद न करे, वे जो भी कर रहे हों, करने दिया जाए, उनकी हर इच्छा पूरी की जाए, उनके काम में रोक-टोक न किया जाए। ...और तुम दारुक, तुरंत रथ लेकर आओ, रुक्मिणी को ले आओ। जब तक दुर्वासा रहेंगे, उनका आतिथ्य उनके जिम्मे। कह देना।"[9]

विनाश को कोई नही रोक सकता। वो चाहे जिस रास्ते भी आ सकती है और द्वारका में दुर्वासा मुणि के बहाने वो आ चुकी थी। दुर्वासा दस-पन्द्रह दिन रहे महल की हर चीज तोड़-फोड़ दी, जला दी और अनमोल वस्तुएँ दूर ले जा कर फेंक आए और जाते-जाते द्वारका पर यह कृपा कर गए कि उसे खंडहर बनाते गए। इसके पहले खीर की माँग की और रुक्मिणी एवं कृष्ण को बुलाया और निर्वस्त्र होने का हुक्म सुनाया, दोनों डरते-सहमते निर्वस्त्र हो गए फ़िर दुर्वासा ने पूरे शरीर में खीर लगाने को कहा। रुक्मिणी ने तो पूरा खीर अपने शरीर पर लगा ली परंतु कृष्ण शरीर पर खीर लगाते समय तलवे में खीर लगाना भूल गए। इसके पश्चात दुर्वासा छकड़ा मँगवाये और बैलों की जगह रुक्मिणी को जोत दिया और हाथों में चाबुक सँभाली और रुक्मिणी के कँधे पर चाबुक मारते हुए दक्षिणद्वार की ओर चलने का हुक्म दिया और पीछे खीर से सने कृष्ण दौड़ते रहे। चारों तरफ़ द्वारकावासियों की भीड़ थी और वे अपने इश्वर और उनकी पटरानी की ऐसी-तैसी होते आँखे फाड़ देखते रहे।

द्वारका की विनाश की पटकथा दुर्वासा लिख चुके थे। इन्हीं दिनों एक घटना हो गई। कृष्ण के 80 बेटों में एक साम्ब। साम्ब कृष्ण की आठ रानियों में से जांबवती से उत्पन्न। सुंदर और नौजवान, अस्त्र–शस्त्र की शिक्षा ताऊ से मिली थी और बलराम के निकट भी था। नकल उतारना, स्वांग रचना, अभिनय करना और खेल-कूद के नए तरीके ढूँढ निकालना उसके प्रिय शगल थे। तो हुआ यह कि उसने यादव युवकों के साथ उस पार पिंडारक क्षेत्र में गायों के साथ जाने की और साथ में वनभोज करने की योजना बनाई और पहुँच गए उस तपोवन में। गायों को छोड़ सब शिकार किये माँस पकाए और मदिरा के साथ उसका सेवन। इस बीच साम्ब का मित्र सुवर्ण बोला– "मैं यह सोच रहा था कि तपोवन में नाक-कान दबाए ये मुणि जो बैठे रहते हैं, कुछ जानते बूझते भी हैं कि ऐसे ही सबको उल्लू बनाते हैं?"[10]

इस बात पर साम्ब खड़ा हो गया और सबसे पूछा कि क्या चाहते हो कि इन मुनियों की परिक्षा ली जाए? सबकी सहमति बन गई और साम्ब खाली मटकी फोड़ दी और उसकी पेंदी अपनी पेट पर बाँध ली और अपने मित्र से वह साड़ी ली जो वह पगड़ी की तरह बाँधे था जो उसकी पत्नी के थे। अब साम्ब साड़ी पहन और घूँघट निकाल चल पड़ा मुणियों कि परिक्षा लेने। तपोवन के ऋषि साधारण ऋषि नहीं थे। इनमें कश्यप थे, विश्वामित्र थे, नारद थे, कण्व थे। सभी एक साथ मुणियों के पास पहुँचे और उनके चरण-स्पर्श किए, उस क्षण वहाँ का वातावरण मदिरा के भभके से भर गया। साम्ब का मित्र सारण स्त्री बना साम्ब की तरफ इशारा करके बोला- महर्षियों यह बभ्रु की पत्नी है और पेट से है आप तो सर्वज्ञानी हैं जरा ये बताएँ की इसके गर्भ से क्या उत्पन्न होगा?

ऋषि मारे क्रोध के काँपने लगे। उनकी आँखे लाल हो हई। चेहरा तमतमा उठा। बोले-

"क्रूर, धोखेबाज, दुष्ट, दुराचारी यादवकुमारों! कृष्ण का यह पुत्र साम्ब लोहे का एक भयंकर मूसल पैदा करेगा जो तुम सभी यादवकुलों का नाश करेगा। अब तुम यहाँ से भागो।"[11]

अब द्वारका का अंत आ चुका था। अगली सुबह साम्बने सचुमूच मूसल पैदा किया। कृष्ण को इस बात की जानकारी पहले ही मिल चुकी थी सो सबसे सलाह-मशविरा कर मूसल को चूर्ण-चूर्ण कर समुद्र में फेंक दिया गया। परंतु किसी ने यह नहीं सोचा था कि वह मूसल लहरों ए साथ बह कर आ जाएगा और एक सरपत की तरह उग जाएगा।

बात तो आई-गई हो गई और इस घटना को बीते बहुत समय हो चुका था। होली का दिन था सभी भाँग पी कर मस्त थे। नशे में एक दूसरे पर फब्तियाँ कस रहे थे। बात ज्यादा ही बढ़ गई और सत्यिक उठा और कृतवर्मा का सर धर से अलग कर दिया। फिर नशे में घुम-घुमकर दूसरे लोगों कभी वध करने लगा। इसी बीच कुछ लोगों ने सात्यिक को घेर लिया और मारने लगे यह देख कृष्ण का पुत्र प्रद्युम्न उसे बचाने कूद पड़ा परंतु उस भीड़ में कृतवर्मा के साथ वह भी मारा गया। कृष्ण सबसे प्यारा और बहादुर बेटा उनकी गोद में अचेत पड़ा हुआ था।

कृष्ण उठकर खड़े हो गए- उत्तेजित और क्रुद्ध। पुत्र-वियोग में अपना आपा खो बैठे। उन्होंने एक मुट्ठी सरपत उखाड़ ली, हाथ में सरपत आते ही लोहे का वज्र मूसल हो गया । फिर तो जो सामने आया उस मूसल ने उसे यमलोक की ओर भेजना शुरू कर दिया। आपस में सब लड़ने लगे और एक दूसरे को मारने लगे। लेकिन इसी बीच कृष्ण का पुत्र साम्ब, चारुदेष्ण के साथ पौत्र अनिरुद्ध भी मारा गया। इसके बाद तो कृष्ण के हाथों उस मूसल द्वारा शेष सभी बचे यादवों का संहार हो गया। इस तरह मुनियों का दिया हुआ श्राप सच हुआ।

बलराम ने जलसमाधी ले ली और कृष्ण ने तपस्या के लिए जंगल की ओर प्रस्थान किया। जंगल में पहुँच कृष्ण एक जगह बैठ गए आँखे बंद कर और याद करने लगे अपने बीते दिन- गायों को चराना, गोकुल की यादें, गोपियों संग की गई रासलीला, ग्वालबालों संग माखन चुराना आदि। तभी उनके मुँह से 'आह' निकली। यह 'आह' राधा की स्मृति की नहीं थी, बल्की उस तीर की थी जो आकर उनके तलवों को भेदता हुआ पार चला गया था। थोड़ी देर बाद जिसके गोद में उनका सर पड़ा हुआ था, कृष्ण के पूछने पर उसने अपना नाम बताया- वसुदेव पुत्र जरा। आगे उसने कहा कि मैं तो हिरन को घायल करना चाहता था और यूंही सर्पत का तीर चलाया था परंतु धनुष पर इसे चढाते ही वह वज्र जैसा भारी कैसे हो गया?

कृष्ण बूदबुदाए- "जब मैं ही नहीं समझ सका इस जीवन और जगत के रहस्य को, तो दूसरा कोई क्या समझेगा?"[12]

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. सिंह काशीनाथ, उपसंहार, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण- प्रथम 2014, पृ. संख्या-50
2. डॉ. शिवचन्द्र प्रकाश, परिकथा, सं.- शंकर, नई दिल्ली, अंक-52, सितंबर-अक्टूबर-2014, पृ. संख्या- 26
3. डॉ. शिवचन्द्र प्रकाश, परिकथा, सं.- शंकर, नई दिल्ली, अंक-52, सितंबर-अक्टूबर-2014, पृ. संख्या- 26
4. सिंह काशीनाथ, उपसंहार, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण- प्रथम 2014, पृ. संख्या-57-58
5. सिंह काशीनाथ, उपसंहार, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण- प्रथम 2014, पृ. संख्या-49
6. सिंह काशीनाथ, उपसंहार, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण- प्रथम 2014, पृ. संख्या-55
7. सिंह काशीनाथ, उपसंहार, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण- प्रथम 2014, पृ. संख्या-83
8. सिंह काशीनाथ, उपसंहार, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण- प्रथम 2014, पृ. संख्या-85
9. सिंह काशीनाथ, उपसंहार, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण- प्रथम 2014, पृ. संख्या-89
10. सिंह काशीनाथ, उपसंहार, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण- प्रथम 2014, पृ. संख्या-99
11. सिंह काशीनाथ, उपसंहार, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण- प्रथम 2014, पृ. संख्या-100
12. सिंह काशीनाथ, उपसंहार, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण- प्रथम 2014, पृ. संख्या-126